रिक्तकुंभ शक्कर

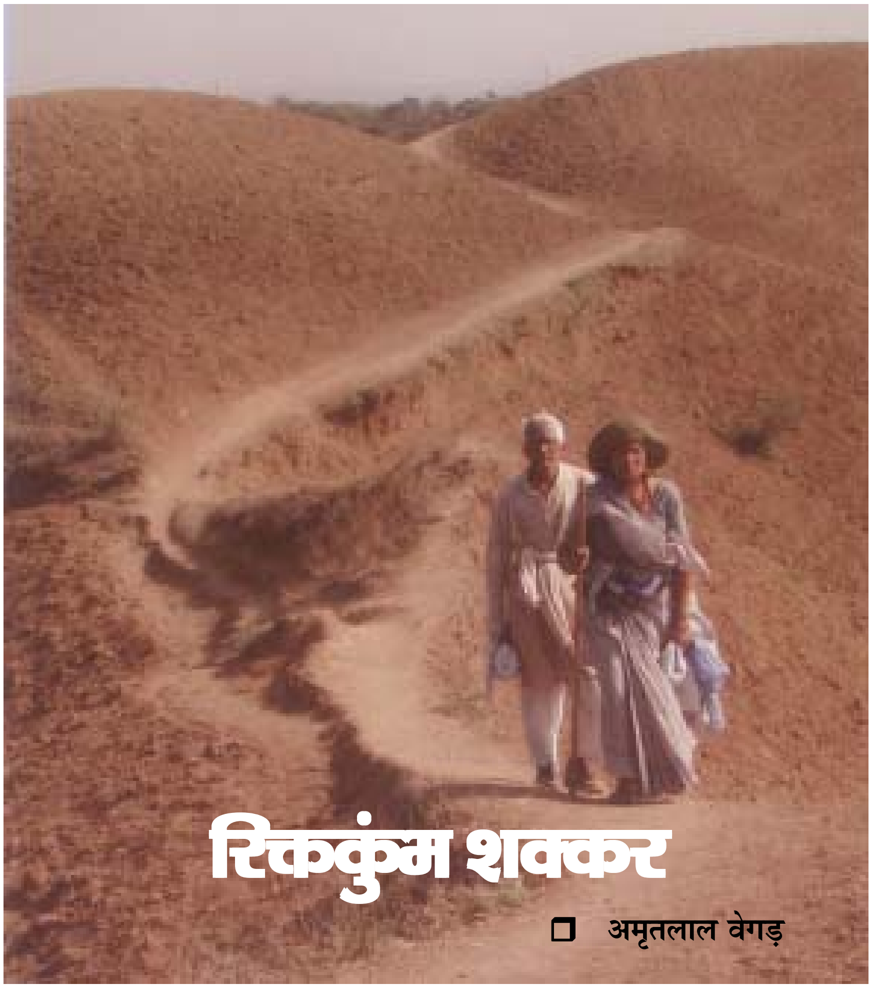

□ अमृतलाल वेगड़

बादलों के मन को दो ही चीजें जीत सकती हैं– ऊँचे पहाड़ और सघन वन। इन दोनों के प्रति बादलों के मन में सम्मान का भाव होता है। इन्हीं से आकर्षित होकर वे आकाश से नीचे उतरते हैं। पहाड़ और जंगल के कारण ही वर्षावतरण होता है, साल-दर-साल, लेकिन हमने अधिकांश जंगल काट डाले। इससे पानी कम बरसता है और नदियाँ सूख जाती हैं।

नदियाँ क्यों सूख रही हैं? क्या समुद्र सूख गया है? क्या बादल नहीं आ रहे? समुद्र भरपूर भरा है और बादल भी आ रहे हैं। बादलों का कारवाँ सुदूर समुद्र से पानी लेकर आता है, लेकिन उसका दोस्त जुगल न रहा। इसी से वे बिना बरसे चले जाते हैं।

नदी यानी बेल-धरती पर पसरी पानी की बेल। जंगल काटकर हमने उसकी जड़ को ही काट डाला।

अभी हमारी नदियों की दैत्य-दशा चल रही है। उस कराल दैत्य का नाम है आदमी। अपनी हजार क्रूर आँखें फाड़कर यह शिकार लोलुप दैत्य कह रहा है 'हवा को, पानी को, पशु-पक्षी को, पेड़-पौधों को, नदी को, मिट्टी को- किसी को भी जिंदा नहीं छोड़ूँगा। सभ्यता के कुंड में इन सभी को झोंककर राख कर दूँगा, तभी मुझे शांति मिलेगी।'

परंतु मैं यह सब क्यों लिख रहा हूँ?

क्योंकि नर्मदा की जिस सहायक नदी की पदयात्रा करने आए हैं, उसमें पानी की एक बूँद नहीं। शक्कर सूख गई थी। नदी से पानी अलोप हो चुका था। पानी की कलकल ध्वनि की जगह सन्नाटा था। लोगों ने कहा, शक्कर को पहली बार सूखते देखा। संगम पर जो थोड़ा-सा पानी था, वह नर्मदा का घुस आया पानी था। स्वयं नर्मदा में बहुत कम पानी था।

उदास आँखों से नदी को, नहीं, नदी के कंकाल को (कठोर शब्द का प्रयोग करूँ तो नदी की लाश को) देखता रहा। पानी के साथ ही नदी का माधुर्य भी चला गया था। पल भर के लिए मन में यह विचार भी आ गया- इस सूखी नदी की परिक्रमा करने की बजाय किसी और नदी की परिक्रमा क्यों न करें। क्या कोई ऐसे मंदिर की परिक्रमा करेगा, जिसमें मूर्ति ही न हो? क्या पृथ्वी ऐसे सूर्य की परिक्रमा करेगी, जो जलकर राख हो गया हो?

पानी न होने के कारण शक्कर वैसे ही अपने आपको परित्यक्त और शक्तिहीन अनुभव कर रही थी। अब हम भी उसे छोड़ दें? अगर वह संपन्न है तो हम उसके साथ हैं, अगर विपन्न है तो हम उससे किनारा कर लें? तब तो हमारे जैसा स्वार्थी भला और कौन होगा?

माना कि शक्कर का घड़ा अभी खाली है, लेकिन बरसात में तो वह भरेगा ही। उसका रिक्तकुंभ पुनः पूर्णकुंभ होगा। हम उसकी परिक्रमा जरूर करेंगे। माना कि पानी नदी का सबसे महत्वपूर्ण घटक है, लेकिन केवल वही तो नहीं। दोनों किनारों का परिवेश है- कगारें, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, खेत-खलिहान, ग्रामीण स्त्री-पुरुष ये सभी तो हैं। इनके अलावा पानी न होने के कारण हम उस पलंग को भी देख पाएँगे, जिस पर नदी सोती है। हर बार आभूषण देखते थे, इस बार मंजूषा देखेंगे।

शक्कर गाडरवारा से प्रायः 20 किलोमीटर दूर नर्मदा से मिली है। हम सीधे संगम गए और वहाँ से भरी दोपहर में यात्रा शुरू की। तारीख थी 21 मार्च, 2009। धूप की परवाह किए बगैर सारा दिन चलते रहे। अधिकांश खेत खाली पड़े थे। प्रकृति में अत्यधिक रुखापन था। नदी की तो मानो हड्डियाँ निकल आई थीं। चुप-चुप और मुरझाई-मुरझाई नदी को देखकर दिल दुखता था।

शाम का धुँधलका अँधेरे में डूब चला,

पर डमरू घाटी न आई। वहाँ पहुँचते रात हो आई। यहाँ एक बड़ा मंदिर है, जिस ऊँचे प्लेटफार्म पर मंदिर बना है, उसका आकार डमरू जैसा है, इसीलिए जगह का नाम है डमरू घाटी। पास में शक्कर है और उस पार है गाडरवारा। वैसे तो नया साथी कोई नहीं, पर शैलेन्द्र का परिचय कराना जरूरी है। शैलेन्द्र एक घुमक्कड़ जीव हैं, कभी अकेले भी नर्मदा पदयात्रा पर चल देते हैं। शैलेन्द्र अधेड़ उम्र में भी चुस्त और फर्तीले हैं। मैंने उनसे पूछा कि आप अपनी पत्नी को क्यों नहीं ले आए तो उन्होंने कहा कि बहुओं ने उसे जरूरत से ज्यादा सुख दिया। उसे सोफा पर बिठा दिया और हाथ में रिमोट पकड़ा दिया। नतीजा यह हुआ कि उसके लिए चलना-फिरना मुश्किल हो गया है। अगर नीचे बैठ जाए तो बिना सहारे के उठ नहीं सकतीं। कुछेक सुख दुःखदायी होते हैं। इनमें प्रमुख है टीवी का सुख।

शैलेन्द्र ने दाहिने हाथ पर अपना पूरा नाम मय पते के गुदवा रखा है। मकान नंबर तक है। कारण पूछने पर बोले, 'नौकरी के दौरान मुझे मंडला के जंगलों में रहना पड़ा। रात में प्रायः जीप से यात्रा करनी पड़ती। दो-एक बार तो शेर जीप के साथ-साथ दौड़ा। सोचा, ऐसे में कहीं मर-मरा गया तो लोगों को पता कैसे चलेगा कि लाश किसकी है? इसलिए पूरे ठौर-ठिकाने के साथ नाम गुदवा लिया।' मैंने यह नहीं पूछा कि शेर अगर दाहिना हाथ ही खा जाता तो? खैर, चुनाव आयोग अगर इस गुदना-पद्धति को अपना ले, वयस्क होते ही मतदाता के दाहिने हाथ पर उसका नाम गुदवा दिया करे तो जाली मतदान बिलकुल बंद हो जाए।

शैलेन्द्र बेहद सेवाभावी हैं। इसका पता तो हमें पिछली पदयात्रा में ही चल गया था। चाहे जितनी ठंड हो, वे रात में तीन बजे उठ बैठते और अपनी खटर-पटर शुरू कर देते। चूल्हा सुलगाकर पानी गरम करते, फिर कहते- उठो-उठो, गरम पानी पीओ! पैर की सिकाई करो, उठो! हम गहरी नींद में होते, हड़बड़ाकर उठते, गरम पानी पीकर फिर सो जाते! कुछ लोगों ने उनका नाम रखा था 'भोर का भूकंप'। दरअसल शैलेन्द्र के बेटों की डेरी है। शैलेन्द्र का काम है सुबह तीन बजे से भैंसों को पानी पिलाना। उनके इसी सेवाकार्य का विस्तार हुआ है और हम भी उनके दायरे में आ गए हैं। भाग्य से इस बार उन्होंने अपने सेवाकार्य से हमारी नींद हराम नहीं की। कुछेक लोगों में सेवा की भावना कितनी प्रबल होती है!

साथ में छोटा बेटा नीरज भी है। पहले भी चल चुका है। पेशे से वकील है, पर उसका मन वकालत में नहीं, फोटोग्राफी के पीछे पागल है। पक्षियों की फोटोग्राफी उसे विशेष प्रिय है। पक्षियों से बढ़कर उसका कोई मीत नहीं। जाने कहाँ-कहाँ से तरह-तरह के पक्षी उसे दिखाई दे जाते हैं। पेड़ के खोखल में छिपे पक्षी तक उसे दिख जाते। उसे चिड़ियों की पहचान भी खूब है। उसका बस चले तो मुकदमे की पेशी पर वह किसी चिड़िया को भेज दे– संभवः कौए को, क्योंकि पक्षियों में वही सबसे चतुर होता है और वकील की वर्दी तो वह पहले से ही पहने है और खुद चिड़ियों के फोटो लेता रहे।

सुबह चल दिए। नदी में डग-डग पर मोड़ हैं। दूर-दूर तक गेहूँ के खेत फैले थे। कुछेक खेतों की फसल सुनहरे समुद्र-सी लगती, कुछेक की फसल अभी हरी थी तो कुछेक खेतों की फसल कट चुकी थी। एक जगह हमारी ओर का तट बहुत ऊँचा था, लेकिन सामने का तट नीचा था। बरसात में नदी का पानी किनारा लाँघकर सामने के मैदान में भर जाता है। वहाँ इतनी अच्छी फसल होती है कि खलिहान छोटे पड़ जाते हैं। वैसे भी यहाँ की काली मिट्टी बेहद उपजाऊ है। नरसिंहपुर समृद्ध जिला है। यहाँ कितने लोग हमारी मेजबानी करना चाहते हैं। कहते हैं, 'शक्कर की परिक्रमा कोई नहीं करता। धन्य भाग्य जो आप हमारी नदी का परकम्मा कर रहे हैं। आइए, हमारे घर रहिए।' कोई रास्ता दिखाने दूर तक साथ चलता।

चलते-चलते अचानक मेरे मुँह से चीख-सी निकली, 'पानी!' नदी में डबरों में भरा पानी दिखाई दिया। मेरा दिल उछल पड़ा। तो बेल पूरी तरह से सूखी नहीं है, अभी कुछेक पत्ते बाकी हैं।

अगर मैं मॉडर्न आर्ट वाला होता तो इसी बात को इस तरह से कहता- निदाध (ग्रीष्म) ने अपने दाँत और नाखून से नदी की चादर को फाड़कर चिथड़े-चिथड़े कर दिए हैं। डबरे यानी पानी के चिथड़े। है न मॉडर्न उपमा!

किन्तु आगे नदी फिर सूखी थी। शक्कर सूख जरूर गई है, पर नीचे तो पानी है। लालची मनुष्य के पंजों से यह भूगर्भ जल भला कैसे बच सकता है! किसी ने शक्कर के सूखे पाट में बोरिंग कर रखा था और नदी के बचे-खुचे पानी को भी निचोड़ रहा था। मनुष्य धरती के अंदर के पानी को बेरहमी से निकाल रहा है। एक इत्ता-सा छेद भी बड़े से बड़े बरतन को खाली कर देता है। यहाँ तो कदम-कदम पर बोर हैं। नदी के सूने घर में चोरी करने जैसा है यह।

शाम को नदी-तट पर एक किसान मिला। उसकी दाढ़ी बढ़ी थी। उसके चौड़े चेहरे पर दोस्ती का भाव था। बोला, 'चलिए, आज मेरे घर रहिए।' नाम है हाकमसिंह कौरव। इधर कौरव बहुत हैं। उसने एक मजेदार बात कही। रामायण में कहीं भी लक्ष्मण और हनुमान के बीच संवाद नहीं हुआ। यहाँ तक कि हनुमान संजीवनी बूटी ले आए, जिसके कारण लक्ष्मण के जीवन की रक्षा हुई, तब भी लक्ष्मण की हनुमान से कोई बात नहीं हुई! है न अचरज की बात!'

गाँव का साधारण-सा किसान भी कैसे-कैसे सवाल कर सकता है! हाकमसिंह विनोदी है। भोजन बनाने में थोड़ी देर हुई। तब तक शैलेन्द्र सो गए थे। कोई उन्हें जगाने लगा तो हाकमसिंह बोले, 'सोते शेर को जगाते नहीं!'

एक तो दिन भर की प्रचंड भूख, दूसरे लकड़ी की आग में पका भोजन, इतना स्वादिष्ट कि पूछिए मत। भूख किसे कहते हैं, स्वाद किसे कहते हैं, वह इन पदयात्राओं में समझ में आता है। घरों में तो हम आदत के कारण खाते हैं, भूख के कारण नहीं।

सुबह आगे बढ़े। एक गाँव में शैलेन्द्र के परिचित रहते थे। उनके घर गए। उनसे बातें कर रहे थे तभी घर में से एक सुंदर महिला बाहर आई और चहककर बोली, 'चाचाजी, मैं मयूरा!'

शैलेन्द्र ने उसके माथे पर हाथ रखा और आशीर्वाद दिया। मुझसे बोले, 'यह लड़की मेरे सामने बड़ी हुई। हमारे पड़ोस में रहती थी। पड़ोस में एक लड़का भी रहता था। अठारह बरस पूरे होते ही इसने उस लड़के से अन्तर्जातीय विवाह कर लिया। उस दिन से इसके माता-पिता ने इनसे संबंध तोड़ लिया। लेकिन हम लोगों ने नहीं तोड़ा। यह आज भी हमारी बेटी है। इसका पति साफ्टवेयर इंजीनियर है। इसके माता-पिता अगर अपने समाज में लड़का ढूँढ़ते, तो इतना अच्छा लड़का शायद ही मिलता। लड़की सुखी है और उसके प्यारे-प्यारे दो बच्चे भी हैं।'

एक न एक दिन उसके माँ-बाप उसे जरूर अपना लेंगे। मयूरा ने कान्ता से कहा, 'माताजी, अंदर आइए।' यह उसके सास-ससुर का घर है। अभी बच्चों की छुट्टी है, इसीलिए यहाँ आई है।

उसके ससुर रास्ता दिखाने साथ चले। बघौरा पहुँचे तो दिन ढल चला था। नदी किनारे अलस भाव से पसरी छोटी-सी बस्ती है बघौरा। यहाँ भगवानदास के घर हमारे रहने की व्यवस्था करके वे लौट गए। भगवानदास की पत्नी ने हमें खाना बनाने नहीं दिया, खुद ने हम सभी के लिए साग-पूड़ी बनाई। केवल दो व्यंजन वाला यह खाना किसी दिव्य भोज से कम न था।

सुबह भगवानदास ने कहा कि शक्कर पास में ही है और उसमें पानी भी बह रहा है। हम वहाँ गए। हम सभी ने शक्कर की धागे-सी पतली छिछली धारा में स्नान किया और आगे बढ़े।

मैं खुश था कि हमारी पदयात्रा ठीक-ठाक चल रही है। हम रोज 17-18 किलोमीटर चलते। इस ओर चट्टान तो क्या कंकड़ तक नहीं। पहाड़ भी नहीं। हमारी घुमावदार पगडंडी नदी किनारे की मिट्टी की लहरों की तरह उठती-गिरती टेकरियों की कतार पर से है। हम निरंतर चढ़ते-उतरते रहते।

वज्रपात सर्वथा आकस्मिक था। कल शाम तक उसके आने का कोई संकेत न था। आज सबेरे से ही मुझे साँस लेने में कठिनाई हो रही थी। चढ़ाई चढ़ते समय जोर-जोर से हाँफता। थोड़ी देर बाद तो सपाट मैदान पर चलने पर भी हाँफने लगा। कई जगह उड़ावनी हो रही थी। गर्म हवा के तेज झोंकों के कारण भूसे के बारीक कण मेरे नथुनों और श्वास-नली में घुस गए थे और मुझे ठीक से साँस नहीं लेने दे रहे थे। इस ओर बारीक पाउडर जैसी धूल है, वह भी गई होगी। इनहेलर काम नहीं कर रहा था। मेरा दमा उखड़ा था।

दमा कुटिल और धूर्त होता है। हमें और हमारे स्वास्थ्य को किस्तों में चौपट करता है। इस तरह अचानक चोट पहुँचने में उसे मजा आता है अथवा यह भी हो सकता है कि कल शाम से ही वह छिपते-छिपाते मेरा पीछा कर रहा हो और मुझे इसका पता न चला हो। आज सुबह उसने मुझे धर-दबोचा। होशियार शिकारी अपने शिकार को घेरता ही नहीं, उसे चित्त भी करता है। अब मैं साँस नहीं ले रहा था, हवा निगल रहा था। मैं ठीक से चल नहीं पा रहा था। मैं लाठी नहीं लेता, कान्ता लेती है। मैंने उसकी लाठी ले ली। मुझे उसके सहारे की जरूरत थी। खाँसी अलग परेशान कर रही थी। दमे और खाँसी के मणिकांचन

योग के कारण अब मुझे हर पन्द्रह मिनट पर सुस्ताने के लिए रुकना पड़ता था। कान्ता का उद्वेग मैं देख रहा था। उसका बस चलता तो मेरी सारी पीड़ा पी जाती, लेकिन मेरी पीड़ा तो मुझे ही झेलनी होगी। इसमें प्रॉक्सी नहीं चलती।

कल शाम से हम जिन पहाड़ियों को दूर से देखते आ रहे थे, वे पास आ गई थीं। इसी की तलहटी में है किसी गोंड राजा की ढाई सौ साल पुरानी गढ़ी। जब वह बिलकुल पास आ गई तो मेरे घिसटते पाँवों में जान-सी पड़ गई। रोज की अपेक्षा आज हम कम चले थे, फिर भी 10-12 किलोमीटर तो चले ही थे। हम वहाँ पहुँचे तब सूरज आग बरसा रहा था। किसी ने परित्यक्त गढ़ी की मरम्मत करवाकर उसे रहने लायक बना दिया है, जिस गढ़ी या महल में कभी राजा-रानी रहते थे, उसमें अब कुछ बाबा रहते हैं। हम भी उसी के एक कमरे में रहे। मैं बेजान-सा पसर गया। शांत और एकांत जगह है। शाम का समय परिसर में टहलते हुए बिताया। गरमी की रात का सुहानापन मानो मेरी आत्मा में प्रवेश कर गया।

सुबह जागा तो पेड़ों में पक्षी प्रभाती गा रहे थे और नीरज उनके फोटो ले रहा था। उसे यहाँ कुछेक दुर्लभ पक्षी मिले जो संभवतः अफ्रीका से आए थे। मुझे थोड़ा आराम लगा, लेकिन यह मेरा भ्रम था। थोड़ा चलते ही हाँफने लगा। दमघोंटू दमा मेरे फेफड़ों में घुसकर मुझ पर हुक्म चला रहा था। घर लौटने के सिवा कोई चारा न था। मुझे दुःख था कि मेरे कारण मेरे साथियों की यात्रा भी अधूरी रह गई।

(अकेले शैलेन्द्र आगे गए। आकर उन्होंने बताया-पहाड़ों के उस पार सँकरी पहाड़ी घाटी की खड़ी चट्टानों के बीच से बहती शक्कर स्वर्ग-सी सुंदर है। युधिष्ठिर की तरह अकेले शैलेन्द्र ही उस स्वर्ग में जा सके। बाकी के हम सभी यहीं रह गए।)

यहाँ गोंड राजा ने 52 कुएँ खुदवाए थे, लेकिन अब दो ही बचे हैं। एक गड्ढे में इसलिए पानी इकट्ठा किया गया है, ताकि रात में जंगली जानवर आकर अपनी प्यास बुझा सकें। प्यास के कारण उनका भी बुरा हाल है। पहाड़ी पर सागौन के पेड़ हैं, लेकिन पत्ते न होने के कारण निरे ठूँठ लग रहे थे। उन पर जो कौए बैठे थे, वे भी मौन थे। अनासक्त भाव से मैं यह सब देख रहा था।

दोपहर की आग बरसाती धूप में एक बाबा अपने चारों ओर कंडों की छोटी-छोटी ढेरियाँ लगाकर उनके बीच पद्मासन लगाकर बैठा। फिर उसने उन ढेरियों में आग लगाई। पहले ध्यान मुद्रा में बैठा, फिर प्राणायाम किया। बीच-बीच में चमीटे को तलवार की तरह भाँजता। हर ढेरी को हौले से छुलाता। आग बुझने के साथ ही उसने शंख फूँका। यह अनुष्ठान पूरा होने की घोषणा थी। इस एकांत में छह-सात बाबाओं को छोड़कर कोई नहीं रहता। लगता था वह एकांत साधना कर रहा था।

एक दुबला-पतला दुहरी दाढ़ी वाला बाबा भी था। उसके पोपले चेहरे पर भक्ति का भाव था। उसने कहा, 'मैं एक संपन्न परिवार से हूँ। एक बड़े ज्योतिषी ने मुझसे कहा कि तुम साठ बरस से ज्यादा नहीं जिओगे। आज 92 का हूँ और मुझे बुखार तक नहीं आया।'

यात्रा का अंत एक टीस लेकर आया। इस बार मैं परीक्षा में पूरा न उतर सका। मैंने यात्रा शुरू की थी मस्ती के साथ और वह चल भी रही थी बड़े ठाठ से, किन्तु उस मस्ती को मैं बनाए न रख सका। बोतल के जिन्न की तरह मेरा दमा बाहर निकल आया था और मुझे परेशान कर रहा था। पिटे हुए पहलवान की तरह मुझे बीच से ही लौटना पड़ा।

एक बात साफ समझ में आ रही है : अब गर्मियों में चलना संभव नहीं। जो दमा अभी तक नरमी से पेश आ रहा था, वह सख्ती दिखाने लगा है। मुझे अपनी पदयात्राओं के अंत की आहट सुनाई दे रही है। एक उम्मीद फिर भी है। शायद दीवाली के समय चल सकूँ। आशावादी होने में क्या हर्ज है, दमे से हाँफ तो कभी भी सकता हूँ।

परिक्रमा की तीसरी पुस्तक प्रायः तैयार है। संभवतः यह उसका अंतिम लेख है या एकाध यात्रा का एकाध लेख और आए। पुस्तक शीघ्र ही छप जाएगी। मैया! आशीर्वाद दो कि उसे पढ़कर प्रसन्न होकर पाठक कहें कि वेगड़ जी 92 वर्ष तक जिएँ और उन्हें बुखार तक न आए!

अभी 81 का हूँ। अगर वे 92 की जगह 82 कहेंगे, तब भी मैं खुश हो जाऊँगा और कहूँगा, 'आपके मुँह में घी-शक्कर!'

❖